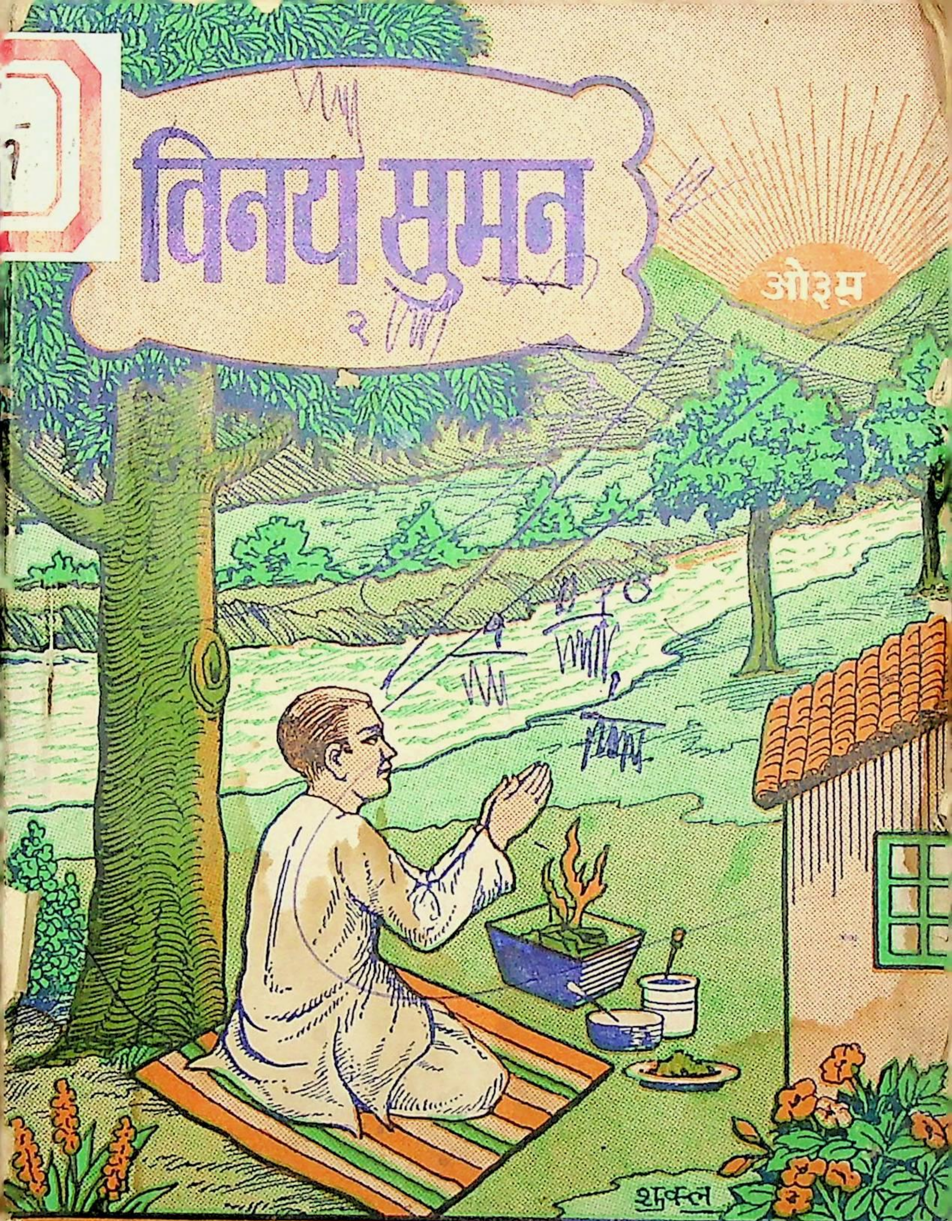
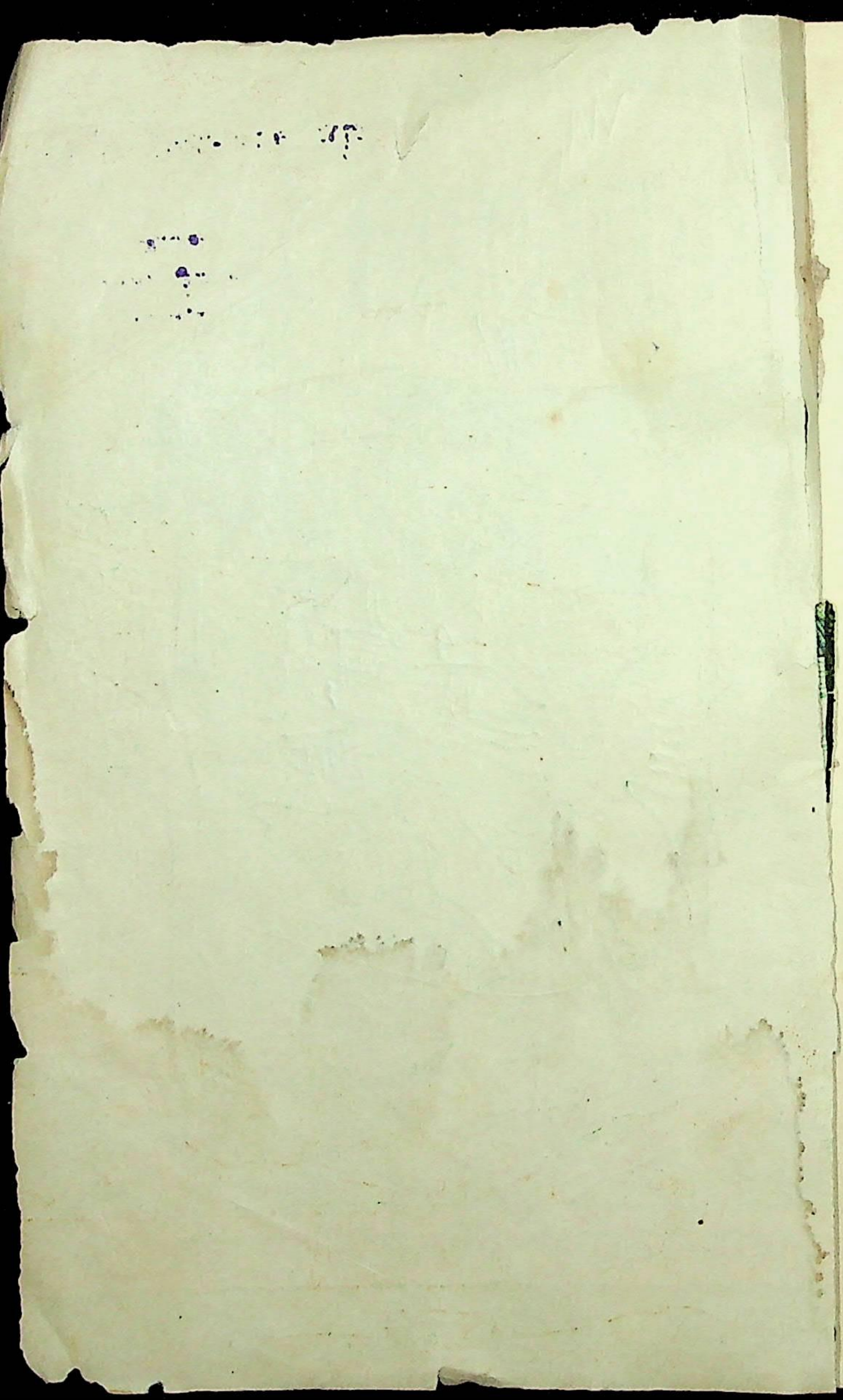


प्रभु शरण में बैठा भक्त, विनय कर रहा है भक्त ॥



ओ३म् शुभ कामनाओं सहित

''असतो मा सद्गमय—तमसो मा ज्योतिर्गमय—मृत्योर्माऽमृतं गमय''

''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्''

''श्रद्धा साहित्य प्रकाशन का ग्यारहवां पुष्प

विनय-सुमन

[भाग—२]

लेखक—

रामप्रसाद वेदालंकार

[संगढ़ विद्यासभा ट्रस्ट, जयपुर से सम्मानित एवं पुरस्कृत]

रीडर एवं अध्यक्ष, वेद विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

निवास : (पुस्तक प्राप्ति स्थान)

कर्मकुटीर, आर्यनगर, ज्वालापुर [पिन-२४९४०७]

जि० : सहारनपुर (उ० प्र०)

प्रकाशक—

'' श्रद्धा साहित्य प्रकाशन ''

द्वितीय संस्करण—४००० प्रतियां

दयानन्दाब्द १५७; सम्वत् २०३८, अगस्त १९८१

आप का दान—श्रद्धा साहित्य का ज्ञान,

मूल्य— पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना।

विषय-सूची

मूल्य "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" मे प्रकाशित पुस्तकें दानियों के दान से प्रकाशित होकर सुपात्रों को वितरित कर दी जाती हैं । पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना ही इनका मूल्य है ।

जो महानुभाव इस सरल-सुबोध वैदिक-साहित्य के प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देना चाहें, वे कृपया लेखक के पते पर भेजें वा पत्र-व्यवहार करें ।

न्यूनसे न्यून १० रुपये तक को राशि 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" के किसी एक पुष्प की दान-सूची में प्रकाशित की जायेगी । इस से न्यून राशियों को 'फुटकर' दान के रूप में प्रकाशित किया जायेगा ।

भूमिका

'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' से 'पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती जी' की पुण्य स्मृति में 'प्रार्थना सुमन भाग-१' अप्रैल १९७९ में छपकर 'व्यास आश्रम हरिद्वार के 'साधना शिविर' की पूर्णाहुति पर वितरित की गई। उस पुस्तक का पूर्ण स्वाध्याय करने पर वानप्रस्थ आश्रम में निवास कर रहे एक प्रभु परायण दम्पती पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने कुछ और पुस्तकें अपने क्षेत्रमत कुछ सुपात्रों के लिए निवेदनपूर्वक कहीं, जो उन्हें सादर सस्नेह दे दी गयीं। इससे उनको हार्दिक प्रसन्नता हुई, पर साथ-साथ उस माननीया माता सरस्वती जी आर्या एवं आदरणीय भाई श्री रामकृष्णदास जी (प्रधान-आर्य समाज, आर्य नगर पहाड़गंज देहली) के हृदय में यह भावना उत्पन्न हुई कि इस 'प्रार्थना सुमन' का भाग–२ 'श्री महात्मा आनन्द भिक्षु जी' की पुण्य स्मृति में प्रकाशित कर दिया जाय'। उन्होंने मुझे आमन्त्रित करके अपनी यह हार्दिक अभिलाषा अभिव्यक्त की। उन्हीं के स्वर्गीय 'महात्मा आनन्द भिक्षु जी' के प्रति हार्दिक कृतज्ञता भरे भावों को सुन कर उनकी इस अभिलाषा पर फूल चढ़ाते हुए उन्हीं पूज्य महात्मा जी की पुण्य स्मृति में उसी दम्पती के प्रधान सहयोग से यह पुस्तक प्रकाशित होकर 'आर्य वानप्रस्थ आश्रम' ज्वालापुर में उन्हीं को पुण्य जन्म तिथि पर १-१-८० को पुर्णाहुति के उपरान्त वितरित कर दी गई। ...

जहां बहुत से महानुभावों की पुनः पुनः यह जिज्ञासा कि

'प्रार्थना सुमन भाग-२' कब छपेगी ? उनकी इस हार्दिक इच्छा के अनुरूप 'प्रार्थना-सुमन, भाग-२' छप कर प्रकाशित हो गई। कई महानुभावों का फिर भी यह कहना रहा है कि—हम तो बड़ी श्रद्धा से यज्ञ, सन्ध्या के उपरान्त इन प्रार्थनाओं को पढ़ते हैं, परन्तु कईयों को प्रातः अपनी सर्विस आदि कार्य पर शीघ्र जाना होता है, इसलिए समय उन के पास प्रातः कम होता है, परन्तु फिर भी वे श्रद्धापूर्वक इन प्रार्थनाओं को प्रातः पढ़ना चाहते हैं। यदि उनके लिए ये प्रार्थनायें कुछ संक्षिप्त रूप में प्रकाशित की जायें तो अधिक उपयुक्त रहेगा। उनकी इस भावना को सम्मुख रखकर 'विनय-सुमन भाग-१', 'प्रार्थना-प्रदीप भाग-१' प्रकाशित की जा चुकी हैं। विनयसुमन भाग-२, ३, भी प्रकाशित हो गयीं हैं। विनय सुमन भाग-१, प्रार्थना प्रदीप भाग-१ आदि के द्वितीय संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं। विनय सुमन भाग-२ के भी समाप्त होने पर द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है इन पुस्तकों से उन महानुभावों को जिन के पास प्रातः समय तो कम होता है पर श्रद्धा बहुत होती है, उन्हें भी कुछ लाभ हो सकेगा।

यह पुस्तक 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' की ओर से प्रकाशित की जा रही है। यदि इस पुस्तक से अध्यात्मप्रेमी महानुभावों को जीवन में कुछ आगे बढ़ने और ऊपर उठने में सहयोग मिला तो लेखक एवं प्रकाशक अपने को कृतार्थ समझेंगे।

विनीत—

रामप्रसाद वेदालंकार

समर्पण

जिस परम पिता परमेश्वर की अपार अनुकम्पा एवं अपने पूज्य गुरुजनों के उदार हृदय से प्रदान किए हुए ज्ञान-प्रसाद एवं आशीर्वाद से ही मैं 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' का यह ग्यारहवाँ पुष्प 'विनय सुमन, भाग-२' आपके कर-कमलों में समर्पित कर सका हूं, उन्हीं के पावन चरणों में मेरा यह अल्प प्रयास समर्पित है।

विनीत—

रामप्रसाद वेदालंकार

सिद्धान्त-शिरोमणि

विनय सं० १

**ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥**

ऋ. ३-६२-१० । यजु. ३-३५ । यजु. ३६-३ ।

अन्वयः–ओ३म् भूः भुवः स्वः । सवितुः देवस्य (यत्) वरेण्यं भर्गः, तत् (वयम्) धीमहि । यः, (सः) नः धियः प्रचोदयात् ।

अन्वयार्थः– (ओ३म् भूः भुवः स्वः) जो ओ३म् है, सर्व-रक्षक है । भूः भुवः स्वः है, सच्चिदानन्द स्वरूप है, प्राणापान-व्यान स्वरूप है, सर्वाधार दुःखविनाशक और सुखों का देने वाला है, ऐसे (सवितु देवस्य) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक और सब को सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करने वाले, दिव्यगुणों के भण्डार परमदेव का जो (वरेण्यं भर्गः) अति श्रेष्ठ शुद्धतम् वरण करने योग्य, पापों को भस्म करने वाला–समूल समाप्त करने वाला तेजःस्वरूप है (तत् धीमहि) उसका हम ध्यान करें तथा धारण करें, (यः) अब जो उपर्युक्त स्वरूप वाला परमात्मा है, वह (नः धियः प्रचोदयात्) हमारी बुद्धियों को उत्तम-उत्तम गुण, कर्म और स्वभावों में प्रेरित करे वा हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे ।

हे प्रभो ! तू ओ३म् है, व्यापक है, किसी एक वस्तु, व्यक्ति वा स्थान में नहीं वरन् सब में व्यापक है । तू रक्षक है, केवल मेरा नहीं वा हम दो का ही नहीं, प्रत्युत हम सबका रक्षक है, पालक है ।

हे आत्मन् ! तू 'भूः' है. सत् है, स्वयम्भू है, स्वयं सत्ता वाला है, अर्थात् तेरा बनाने वाला कोई नहीं है । तू तो सदा से स्वयं ही विराजमान् है । तू प्राण है, प्राण ही नहीं वरन् प्राणों का भी प्राण है, सबके जीवन का आधार है, अतः प्राणों से भी प्यारा है ।

हे परमात्मन् ! तू 'भुवः' है, चित् है, चेतन है, सब को चेताने वाला हैं, सब को सजग और सावधान करने वाला है, सबको सम्यक् ज्ञान प्रदान करने वाला है । तू 'अपान' है, स्वयं सब दुःखों से रहित है और अपने सम्पर्क में आने वालों को भी तू सब दुःखों से मुक्त कर देता है ।

हे भगवन् तू 'स्वः' है, सुखस्वरूप है, आनन्द स्वरूप है । तू 'व्यान' है, नानाविध जगत् में व्यापक होकर सब को धारण करने वाला है । तू सब सुखों का देने वाला है । जो तेरे सम्पर्क में आते हैं और सदा शुभकर्मों का आचरण करते हैं, उन्हें तू संसार में सदा सुख देता है और संसार से विदा होने पर परमानन्द प्रदान करता है ।

हे सर्वेश्वर ! ऐसे तुझ सर्वरक्षक, प्राणप्रिय, दुख-विनाशक, सुखदाता, सबको उत्पन्न करने वाले, सबको सत्प्रेरणा देने वाले, सबको सब प्रकार के सुखमय ऐश्वर्य प्रदान करने वाले, दिव्य गुणों के भण्डार, स्वयं प्रकाशमान् होकर सब को प्रकाशित करने वाले, कामना करने के योग्य परमेश्वर का जो अति श्रेष्ठ, शुद्धतम, वरण करने योग्य, पापों को भस्मसात् करने वाला तेजोरूप है, हम उसका ध्यान करते हैं, उसको अपने भीतर धारण करते हैं ताकि हमारे भीतर के सब पाप भस्मसात हो सकें ।

हे परमेश्वर ! ऐसे तेजोमय दिव्य स्वरूप वाला जो तू है, वह तू हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित कर, उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रेरित कर ।

हे सर्वरक्षक, प्राणप्रिय, दुःखविनाशक, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! तेरे तेजोरूप के ध्यान और धारण में हमारे सतत् पुरुषार्थ से और तुझ सविता देव के अनुपम अनुग्रह से यदि तेरा यह 'वरेण्यं भर्गः'–वरणीय पापविनाशक तेज हम में घर कर गया तो फिर हमें विश्वास है कि प्रथम तो कोई पाप हमारे पास ही नहीं फटक सकेगा, यदि फटकेगा तो तरन्तु भस्मसात हो जाएगा । ऐसी अवस्था में जब हम पाप और उसके परिणाम स्वरूप होने वाले ताप-सन्ताप से मुक्त होते रहेंगे तो तू फिर और भी कृपालु होकर हमारी निर्मल एवं निश्चल बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करेगा । इस प्रकार सन्मार्ग पर चलते हुए यह संसार भी हमारे लिए स्वर्ग सा बन जायेगा और परलोक भी हमारा सुधर जायेगा ।

प्रभुवर ! हमारी यह हार्दिक प्रार्थना है कि हम जिस तेरे वरणीय तेज का ध्यान करें उस तेज से कभी वञ्चित न रहें, और न ही कभी तेरी सत्प्रेरणाओं से हम वंचित रहें । नाथ! तेरे ही सहारे से हो तो हम सत्पथ के सच्चे पथिक बन कर तेरे प्यार और आशीर्वाद के भाजन बन सकते हैं, अतः कृपा करके तू हमें सद्बुद्धि देकर सत्पथ पर चला ताकि हम तेरा दिव्य प्यार पा सकें ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

विनय सं० २

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ यजु० ३०-३ ॥**

अन्वयः–सवितः ! देव ! विश्वानि दुरितानि परासुव । यत् भद्रं तत् नः आसुव ।

अन्वयार्थः–(सवितः !) हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, उत्तम गुण कर्म स्वभावों में सबको प्रेरित करने वाले, समग्रैश्वर्ययुक्त ! (देव !) शुद्धस्वरूप, दिव्यगुण कर्म स्वभावों के स्रोत, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारे (विश्वानि दुरितानि परासुव)सब दुर्गुण, दुर्व्यसन और उनके परिणामस्वरूप होने वाले दुःखों को दूर कर दीजिए, (यत् भद्रं) तथा जो कल्याणकारी गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं (तत् नः आसुव) वह सब हम को प्राप्त कराइये वा हमारे लिए उत्पन्न कीजिए । (सवितः !) हे प्रभो! तू सविता है, हम सबको उत्पन्न करने वाला है । तू उत्पन्न करके हम सबको यों ही निराश्रय छोड़ देने वाला नहीं है, प्रत्युत हमारी सब प्रकार की व्यवस्था करने वाला है । तू हमें ऐसे प्यारे माता-पिता के रूप में दिव्य संरक्षक दे देता है कि फिर हम सब प्रकार से अपने लिए निश्चिन्त हो जाते हैं और वे हमारे लिए सचिन्त हो जाते हैं । तू नाना प्रकार के ऐश्वर्य हमारे लिए प्रदान कर अपने ही ढङ्ग से उन हमारे संरक्षक माता-पिताओं द्वारा हमारा सब प्रकार से पालन-पोषण करता रहता है ।

यह सब कुछ तू हमें इसलिए प्रदान करता है कि हम सदा सुखी हों, सदा प्रसन्न हों ।

हे सर्वोत्पादक सकलैश्वर्ययुक्त प्यारे प्रभो ! इतना ही नहीं कि तू हमें उत्पन्न करके सर्वविध सुख-सौभाग्य प्रदान कर स्वयं निश्चिन्त बैठ जात है, वरन् तू तो हमें अपने अद्वितीय विधि- निषेधात्मक वेदज्ञान द्वारा सन्मार्ग भी दिखाता है। इसके अतिरिक्त जीवन के सब व्यवहारों में भीतर से सत्प्रेरणा प्रदान कर हमारा मार्गदर्शन भी करता है तथा बाह्य रूप से भी इन अन्धे, बहिरे, गूंगे, लूले, लंगड़े, सुखी, दुःखी मनुष्य एवं पशु-पक्षी आदि प्राणियों के द्वारा भी हमें मूक रूप से सदुपदेश भी देता रहता हैं ताकि हम ऐसा जीवन व्यतीत करें कि हमारी ऐसी दुर्दशा न हो । हम ऐसे ढङ्ग से इन सब सुख-सौभाग्यों का सेवन करें कि परिणाम में हम सब प्रकार से सुखी हों, शाँत हों, तृप्त हों !

देव ! हे शुद्ध स्वरूप सब सुखों के दाता परमात्मन् ! तू देव है, दिव्य है, अनोखा है । तू दाता है, सदा देता रहता है । जो कुछ भी जगत् में बनता रहता है, सब हमें ही देता रहता है, कुछ भी तो अपने लिए नहीं रखता है, फिर भी आश्चर्य यह है कि तू हम से भी अधिक प्रसन्न रहता है ।

हे देव ! तू सदा अपने दिव्य गुण कर्म स्वभावों से देदीप्यमान रहता है। तेरे गुण ही तुझे चमकाते हैं, द्युतिमान् बनाते है, सबके लिए आकर्षक बनाते हैं। जैसे हे प्रभुवर ! तू देता है, तो न कभी जताता है न कभी बताता है और न ही उसका हम से कोई अनुचित लाभ उठाता है । यही बात है कि तू हम सबके हृदय में घर कर जाता है, हम सबके स्नेह,

सम्मान एवं श्रद्धा पूर्वक मनन, चिन्तन, निदिध्यासन और साक्षात्कार का अभीष्ट विषय बन जाता है।

हे देव सवितः! ऐसे तुझ दिव्य, सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने वाले प्यारे प्रभु से हम प्रार्थना करते हैं कि तू अपनी पावमानी वेदवाणी द्वारा, हृदय में सत्प्रेरणाओं द्वारा तथा अपने इन बाह्य मूक अन्धे, बहिरे, गूँगे आदि साक्षात् सदुपदेशकों द्वारा हमारे (विश्वानि दुरितानि परासुव) सब प्रकार के दुरितों को—दुर्गुण दुर्व्यसनों को दूर कर, जिन के परिणाम स्वरूप हमारी दुर्गति होती है और हम दुःख-दारिद्रय के गर्त में गिर जाते हैं। (यत् भद्रम्) और जो हमारे लिए भद्र हो, सुखकारी हो, कल्याणकारी हो अर्थात् इस लोक में हमारे सुख का संवर्धन करने वाला हो तथा परलोक में हमारा सर्व-विध कल्याण करने वाला हो (तत् नः आसुव) ऐसा गुण-कर्म स्वभाव एवं पदार्थ हमें प्राप्त करा।

हे भगवन्! अटके-भटके तो हम अनेकों द्वारों पर, पर कहीं भी हमारा पूर्णरूप से शोधन एवं प्रक्षालन नहीं हुआ, इसीलिए आज भी हम दुरितों के घर बनें हुए हैं। हार के अब आये हैं तेरी शरण में, इस आशा एवं विश्वास से कि यहाँ हमारा पूर्ण प्रक्षालन हो जायेगा और तब हम सबप्रकार से साफ-सुथरे, शुद्ध-पवित्र बनकर जहां अपने इस लोक को भी स्वर्ग-सुख का धाम बना सकेंगे वहाँ अपने परलोक को भी आनन्दमय बना सकेंगे।

हे दिव्य देव! हम ने सुना है कि तेरे दर से कभी कोई निराश लौटा नहीं, कभी कोई उदास लौटा नहीं, हाँ जो यहाँ

आया, वह आशाओं से भर गया और उसकी उदासी प्रसन्नता में बदल गयी। अतः हम तथागतों पर भी कृपाकर एवं हमें सब प्रकार से निहाल कर।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥



विनय सं० ३

**ओ३म् त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ।।**

।। ऋ० ८.९८.११ ।। अ० २०.१०८.२ ।।

अन्वयः—वसो ! त्वं हि नः पिता बभूविथ । शतक्रतो ! त्वं माता बभूविथ । अधा ते सुम्नम् ईमहे ।

अन्वयार्थः—(वसो!)हे सब को बसाने वाले इन्द्र! (त्वं हि नः पिता बभूविथ) तू ही हमारा पिता है, (शतक्रतो!) हे सैकड़ों क्रतुओं-कर्मों-उपकारों के करने वाले परमेश्वर ! (त्वं माता बभूविथ) तू ही हमारी माता है । (अधा ते सुम्नम् ईमहे)अतः हम तेरे सुख को चाहते हैं, तेरा शुभ कामनाओं को चाहते हैं, तेरे शुभ आशीर्वाद को चाहते हैं ।

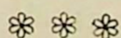
(वसो ! त्व हि नः पिता बभूविथ) हे सबको बसाने वाले प्यारे इन्द्र–प्यारे परमेश्वर! तुम ही हमारे पिता हो, जनक हो, उत्पादक हो, पालक हो, पोषक हो। तुम ही हमारे सब प्रकार से रक्षक भी हो । पापों से सदा तुम ही तो हमें बचाते हो । पापों के परिणामस्वरूप होने वाले ताप-सन्तापों से भी हमें तुम ही बचाते हो । किसी के धन-वैभव, सुख-सौभाग्य पर लुभायमान होकर उस का सेवन करने और उसकी दृष्टि में गिर जाने से तुम ही हमें बचाते हो । हे पितः ! न जाने तुम हमें कितना शुद्ध बनाना चाहते हो ! रात को जब हम सोते हैं तो तब भी तुम हो सदा जागरूक रह कर हमारी रक्षा करते हो ।

हे परमपिता परमेश्वर ! तेरे द्वारा अपना पालन-पोषण, रक्षण-संरक्षण, शिक्षण-प्रशिक्षण देखकर तो हम इतने विभोर हो जाते हैं कि हमें यह जागतिक पिता भी भूल जाता है वा गौण लगता है। क्योंकि यह एक समय आने पर थक जाता है, हार जाता है, निराश और हताश हो जाता है, पर तुम ऐसे पिता हो जो न तो कभी थकते हो, न ही कभी हारते हो, न ही कभी निराश और हताश होते हो। इसीलिए ही तो तुम हमें अपने इस पिता से भी प्यारे लगते हो और सब प्रकार से न्यारे लगते हो। (शतक्रतो ! त्वं माता बभूविथ) हे शतकर्मन् ! हे बहुविध कर्मों के—उपकारों के करने वाले जगदीश्वर ! तुम ही हमारी माता हो, जननी हो, उत्पन्न करने वाली हो। पर उत्पन्न करके ही तुम हमें भुला देने वाली नहीं हो, वरन् उत्पन्न करके भली-भान्ति सब प्रकार से निर्माण करने वाली भी हो। नाना प्रकार के सुन्दर२, स्वादु-स्वादु खाद्य एवं पेय तथा अवलेह आदि पदार्थों से हमें शरीर से सशक्त करने वाली हो। इतना ही नही बल्कि इससे भी आगे बढ़कर नाना प्रकार की विद्याओं, सुशिक्षाओं, सत्प्रेरणाओं, स्नेहों, सहानुभूतियों एवं आशीर्वादों से हमारे मनोबल, बौद्धिक बल तथा आत्मबल को बढ़ाकर हमें इस जगत् में कुछ का कुछ बना देने वाली हो अर्थात् पशु से मनुष्य और मनुष्य से देवता बनाकर इस संसार में खड़ा कर देने वाली हो। हे माँ ! जब हम तुझ परम माँ को देखते हैं तो हमें तब ऐसा लगता है जैसे कि तुम कोई निराली माँ हो ! तब हमें अपनी यह जागतिक माँ भूल जाती है और हम सहज में ही तुझ में समाधिस्थ हो जाते हैं। फिर यह माँ तो कभी थक भी जाती है, हार भी जाती है, निराश और हताश भी

हो जाती है पर तू न कभी थकती है,न कभी हारती है और न ही कभी निराश और हताश होती है,यही तुझमें विशेषता है।

हे वसो ! हे शतक्रतो ! हे सबको बसाने वाले एवं सब पर सैंकड़ों प्रकार के उपकार करने वाले, स्नेह के अनुपम स्रोत माता पिता के रूप में वर्तमान इन्द्र-परमेश्वर ! हमने तुझ से जन्म पाया, पालन-पोषण पाया, रक्षण-संरक्षण पाया, विद्या-विज्ञान पाया, स्नेह और सम्मान पाया, इसलिए आज हम बहुत सुखी हैं, खुशहाल हैं, सुख-सौभाग्य से सम्पन्न हैं, सर्वत्र मान-सम्मान पा रहे हैं, प्रेम और प्यार पा रहे हैं। परन्तु फिर भी न जाने क्यों इस सबको पाकर भी हम भीतर से सर्वथा शान्त नहीं हैं, सब प्रकार से तृप्त नहीं हैं। हमें ऐसा लगता है कि आज भी हमारी आत्मा अशान्त है, अतृप्त सी है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे यह इस सब सुख-सौभाग्य से बढ़कर कुछ और विशेष चाहती हो,कुछ महान् सौभाग्य चाहती हो…। सो हे माताओं की भी माता,हे पिताओं के भी पिता परम प्यारे प्रभुवर ! (अधा ते सुम्नम् ईमहे) अब हम तेरे उस अद्वितीय आनन्द को हृदय से चाहते हैं जिसके उपलब्ध हो जाने पर मनुष्य सब प्रकार से प्रसन्न हो जाता है, निहाल हो जाता है, आनन्द विभोर हो जाता है, सब प्रकार से तृप्त हो जाता है, और फिर उसके लिए कुछ चाहने और पाने के लिए शेष नहीं रह जाता। अतः प्रभुवर ! जैसे हमें संसार में हरा भरा रखा है वैसे हमें भीतर से भी निहाल कर। यही है प्रार्थना हमारी।

ओ३म् शान्तिः शान्ति शान्तिः ॥



विनय सं० ४

ओ३म् त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् ॥

ऋ० १.९७.६ ॥

अन्वयः—विश्वतोमुख ! त्वं हि विश्वतः परिभूः असि । नः अघम् अपशोशुचत् ।

अन्वयार्थः—(विश्वतोमुख !) हे सब ओर मुख वाले प्रकाशस्वरूप प्रभो ! (त्वं हि विश्वतः परिभूः असि) तू ही सब ओर से व्याप्त हो रहा है, अतः (नः अघम् अपशोशुचत्) तू हमारे पाप को दूर कर के भस्म कर दे ।

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तू सर्वतोमुख है, तेरा सब ओर मुख है, अर्थात् तू सब ओर से देखता है, तू सब ओर से सुनता है, तू सब ओर से उपदेश देता है, तू सब ओर से शिक्षा देता है, तू सब ओर से सत्प्रेरणा देता है ।

प्रभुवर ! ऐसा इसलिए है कि तू सब ओर से व्याप्त हो रहा है । कोई ऐसा स्थान नहीं जहां कि भगवन् ! तू विद्यमान न हो, कोई ऐसी वस्तु वा व्यक्ति नहीं जिस में कि तू विराजमान न हो, कोई ऐसा कण नहीं, कोई ऐसा क्षण नहीं जिस में कि तू वर्तमान न हुआ-हुआ हो । हे प्यारे परमेश्वर ! पत्ता-पत्ता, डाली-डाली, व्यक्ति-व्यक्ति और धरती का कण-कण, वस्तु-वस्तु और ये सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र आदि सबके

सब बता रहे हैं कि तू सर्वत्र विद्यमान है और सबको अपने नियमों में बांधे हुए है।

हे पावन परमेश्वर ! हम इस जगत् में कोई भी ऐसा कार्य नहीं कर सकते जिस को कि तू देख न सकता हो, हम कोई भी ऐसा शब्द उच्चारण नहीं कर सकते जिस को कि तू सुन न सकता हो, यहां तक कि हम यदि अपने हृदय में भी कुछ सोचते-विचारते हैं तो वह भी तुझसे छिपा हुआ नहीं रह सकता। इस लिए तू सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है, सार्वदेशिक है, सार्वकालिक है और हमारे सर्व-विध क्रिया-कलापों को भली-भाँति जानता हैं। और यही कारण है कि जब हम कोई बुरा कार्य करने लगते हैं तो तू हमारे हृदय में भय, शङ्का और लज्जा उत्पन्न करने लगता है। ऐसा करने का उस समय तेरा अभिप्राय यही होता है कि हम वह कार्य न करें। और अगर हमारा वह कार्य उत्तम होता है तो तू हमें भीतर से आनन्द, उत्साह और निर्भयता प्रदान कर उस कार्य के प्रति हमें और अधिक अग्रसर कर रहा होता है।

हे ज्ञान प्रकाश के अनुपम स्रोत प्रभुदेव ! तुम्हारी इस अनहेतुकी स्वाभाविक कल्याणमयी वृत्ति को पग-पग पर देख या जान कर ही तो हम विनम्र हो कर तुझ से प्रार्थना करते हैं, तुझ से सविनय विनय करते हैं कि तू हमारे सर्व-विध पापों को हम से दूर कर, पृथक् कर। दूर कर के, पृथक् करके भी उन पापों को तुम ऐसा दग्ध कर दो, ऐसा नष्ट कर दो कि पुनः वे पाप हम पर आक्रमण न कर सकें। इस

प्रकार हम अपने पूर्ण पुरुषार्थ से और तेरी अपार अनुपम अनुकम्पा से सर्वथा निष्पाप और निष्कलंक होकर तुझ दिव्य देव की शरण में स्थिर भाव से-एकाग्र भाव से बैठ कर वह परम प्यार और आशीर्वाद तुझ से पा जायें जिस के परिणामस्वरूप हमारे हृदय की कली खिल जाय और सब ओर अपनी पवित्रता की महक को बिखेरने लगे। यही प्रार्थना है हमारी, यही विनय है हमारी, स्वीकार कर हमें सब प्रकार से कृतार्थ करो।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः



विनय सं० ५

ओ३म् वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥
अथर्व० १९.६०.१ ॥

ऊर्वोरोज जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा ।
अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ॥ अथर्व० १९.६०.२ ॥

अन्वयः—मे आसन् वाक्, नसोः प्राणः अक्ष्णोः चक्षुः, कर्णयोः श्रोत्रम्, केशाः अपलिताः, दन्ताः अशोणाः, वाह्वोः बहुबलम् ।

ऊर्वोः ओजः, जंघयोः जवः, पादयोः प्रतिष्ठा, मे सर्वा अरिष्टानि, आत्मा अनिभृष्टः ।

अन्वयार्थः—(मे आसन् वाक्) मेरे मुख में वाक् शक्ति रहे, (नसोः प्राणः)मेरे दोनों नयनों में प्राण चलता रहे, (अक्ष्णोः चक्षुः) मेरे नेत्रों में दर्शन-शक्ति विद्यमान रहे,(कर्णयोःश्रोत्रम्) मेरे श्रोत्रों में श्रवण-शक्ति रहे, (केशाः अपलिताः) मेरे केश श्वेत न हों, (दन्ताः अशोणाः) मेरे दान्त मलिन न हों, मेरे दान्त झड़ें नहीं (बाह्वोः बहुबलम्) मेरी बाहुओं में बहुत बल हो, (ऊर्वोः ओजः) मेरे **ऊरुओं** में ओज हो, (जंघयोः जवः) मेरी जंघाओं में-मेरी पिंडलियों में वेग हो, (पादयोः प्रतिष्ठा) मेरे पैरों में खड़े होने की शक्ति हो (मे सर्वा अरिष्टानि) मेरे सब अंग-प्रत्यङ्ग नीरोग हों, अहिंसित हों और (आत्मा अनिभृष्टः)मेरा आत्मा कभी अधःपतन की ओर जाने वाला न हो ।

हे जगदीश्वर ! हे परमेश्वर ! मेरे पुरुषार्थ और तेरी कृपा कटाक्ष से मेरे मुख में वाणी हो,बोलने की सामर्थ्य हो । मेरी

नासिका के दोनों नथनों में निरन्तर प्राण प्रवाहित होता रहे। मेरे नयनों में सदा ज्योति बनी रहे, मेरी आंखों में सदा देखने की सामर्थ्य बनी रहे। मेरे दोनों श्रोत्रों में सतत् श्रवणशक्ति बनी रहे, मेरे कानों में सदा सुनने की सामर्थ्य वर्तमान रहे। मेरे केश कभी श्वेत न हों, मेरे बाल कभी सफेद न हों अर्थात् मेरे केश काले बने रहें। मेरे दान्त कभी मलिन न हों, मेरे दान्त कभी झड़ें नहीं, मेरे दान्त कभी गिरें नहीं, अर्थात् मेरे दान्त सदा साफ-सुथरे रहें, सुदीर्घकालावस्थायी रहें। मेरी भुजाओं में बहुत बल हो, मेरी भुजाओं में पर्याप्त सामर्थ्य हो।

हे प्रभो ! हे विभो ! मेरे हार्दिक प्रयास और तेरे अपार अनुग्रह से मेरे उरुओं में सदा ओज बना रहे, मेरी रानों में सदा सामर्थ्य विद्यमान रहे। मेरी जंघाओं में सदा वेग विद्यमान रहे, मेरी पिण्डलियों में निरन्तर गति विद्यमान रहे। मेरे पैरों में प्रतिष्ठित होने की शक्ति हो, मेरे पांवों में खड़े होने की सामर्थ्य हो। मेरे सभी अंग-प्रत्यङ्ग, मेरे सभी शारीरिक अवयव नीरोग हों, अहिंसित हों, सदा स्वस्थ हों। मेरी आत्मा अर्थात् समस्त शरीर वा आत्मा कभी अधःपतन की ओर जाने वाला न हो, कभी नीचे गिरने वाला न हो, कभी पतन के गर्त में पतित होने वाला न हो। वह तो सदा उत्साह से सम्पन्न होकर निरन्तर आगे ही आगे बढ़ने वाला हो।

इन उपर्युक्त दोनों मन्त्रों के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि वह नित्य भ्रमण और व्यायाम करे, सदाचार और शिष्टाचार का पालन करे, सदाहार और सद्व्यवहारपूर्वक प्रातःसायं परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हुआ अपने शरीर और आत्मा को पतन के गर्त में गिरने से जहां बचाता

रहे वहां उत्साहसम्पन्न होकर शरीर और आत्मा को सतत् आगे बढ़ाता और ऊंचा उठाता रहे। इसका परिणाम यह होगा कि जहाँ इस का शरीर नीरोग होगा, स्वस्थ होगा, सशक्त होगा, सब अङ्ग-प्रत्यङ्गों में, सब ज्ञानेन्द्रियों-कर्मेन्द्रियों में सुदीर्घकाल तक खाने-पीने की, सोचने-विचारने की, चलने-फिरने की और कर्म करने तथा दृढ़ होकर प्रतिष्ठित होने की शक्ति होगी, जहां दान्त टिकाऊ होंगे, सदा निर्मल और स्वच्छ होंगे एवं जहां केश सुदीर्घकालपर्यन्त तक कृष्ण रहेंगे, वहां मन भी सदा उसका शान्त होगा और आत्मा भी सदा सोमङ्ग-सोत्साह आगे बढ़ता और ऊँचा उठता रहेगा।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥



विनय सं० ६

ओ३म् अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाबिदज्जरितारम् ।
मृडा सुक्षत्र मृडय ॥ ऋ० ७.८६.४ ॥

अन्वयः– अपां मध्ये तस्थिवांसं जरितारं तृष्णा अविदत् । सुक्षत्र ! मृड मृडय ।

अन्वयार्थः–हे वरुण ! (अपां मध्ये तस्थिवांसं जरितारम्) इन शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्शमय विषय प्रवाहों में स्थित रहने और निरन्तर उनके सेवन से जीर्ण-शीर्ण शरीर वाले हुए-हुए मुझ को अब भी (तृष्णा अविदत्) तृष्णा घेरे हुए है । अर्थात् जीवन भर इन विषयों को भोग-भोग कर क्षीण हो जाने पर भी मेरी तृष्णा अभी बनी हुई है, मेरी वासना अभी बनी हुई है । (सुक्षत्र ! मृड मृडय) हे इन भोगों में क्षत-विक्षत होने से उत्तम विध बचाने वाले प्यारे प्रभो ! तू मुझे सुखी कर, तू मुझे आनन्दित कर ।

हे वरणीय प्रभुवर ! मैं इन संसार के शब्द-रूप-रस-गंध और स्पर्शमय विषयप्रवाहों में निरन्तर वर्तमान रह रहा हूं और सुदीर्घकाल से इन सब को भोग भी रहा हूं, परन्तु आश्चर्य यही है कि बाल्यकाल से निरन्तर इन को भोगते रहने पर भी आज तक मेरा इन से जी नहीं भरा है, इन से तृप्ति नहीं हुई है । मैं सतत् इन विषयों का सेवन करता रहा, यह सोच कर कि कदाचित् इन से मेरी तृप्ति हो जाय, इन से मेरा जी भर जाय, पर इन से मेरी तृप्ति हुई नहीं, इन से मेरा जी भरा नहीं । यहां तक कि इनको भोगते-भोगते

मेरा शरीर भी जीर्ण हो गया पर मैं ने देखा कि मेरी तृष्णा बराबर ज्यों की त्यों बनी हुई है ।

मैंने अपने जीवन में इन कानों से बहुत कुछ सुना, फिर बहुविध सुना । मधुर से मधुर, प्रिय से प्रिय, हितकर से हितकर, सुरीला से सुरीला, कटु से कटु, अप्रिय से अप्रिय, अहितकर से अहितकर, कर्कश से कर्कश, सब सुना । यहां तक कि सुनते-सुनते इन श्रोतों की शक्ति भी क्षीण हो गई । पर आश्चर्य यह है कि श्रोत्रों की सामर्थ्य क्षीण होने पर भी मेरी सुनने की लालसा आज भी बराबर वैसी की वैसीं बनी हुई है । तभी तो मैं अपनी इस लालसाको पूर्ण करने केलिए अपने कानों में यन्त्र लगा-लगाकर भी सुनना चाहता हूं और सुनता भी हूं। मैंने इन आंखों से गणनातीत रूपों को, दृश्यों को, पदार्थों को देखा होगा । यहां तक कि देखते-देखते आंखें हार गयीं—थक गयीं, पर फिर कोई ऐसा रूप वा दृश्य आ जाता है तो मैं फिर आंखें फाड़-फाड़कर वा ऐनक चढ़ा-चढ़ाकर देखने लगता हूं इस लालसा से कि न जाने यह क्या है ? इतना कुछ देख-देखकर भी मेरी देखने की लालसा शांत नहीं हुई । मैंने इस जिह्वा से, इस रसना से न जाने कितने प्रकार के स्वादों का, न जाने कितने प्रकार के पदार्थों का, और वह भी न जाने कितनो-कितनो वार आस्वादन किया होगा परन्तु फिर भी आज तक खाने-पीने की मेरी तृष्णा क्षीण नहीं हुई, भले ही मेरा यह शरीर क्षीण हो गया । मैंने इस घ्राण से भी न जाने कितनी प्रकार की गन्ध-सुगंध का जिघ्रण किया होगा, पर आज भी गंध-सुगंध, वास-सुवास के प्रति मेरी नासिका पूर्ववत् ललचाई वृत्ति से अग्रसर होने लगती है । मेरी इस त्वचा ने

न जाने कितने सुन्दर-सुन्दर, कोमल-कोमल, सुखद-सुखद, रुई, रेशम, ऊन, मखमल इत्यादि के स्पर्शों के भोग का सुख पाया होगा, यहां तक कि इन स्पर्श सुखों को पाते-पाते मेरा तन भी अत्यन्त क्षीरण हो गया, पर आश्चर्य यह है कि स्पर्श सुख की मेरी तृष्णा, लालसा आज भी मुझ को बराबर इस के प्रति उत्सुक बनाए रखती है ।

हे वरण करने के योग्य परम प्यारे परमेश्वर ! इस प्रकार इन विषय-प्रवाहों में निरन्तर वर्तमान रह कर, सतत् इन विषयों का सेवन कर के भी मुझे लगता है कि इन से तृप्त होना सम्भव नहीं, इन से जी भरना सम्भव नहीं, इन से प्यास बुझना सम्भव नहीं । यही प्रतीत होता है प्रभुवर ! कि आगे भी जीवन में इन विषयों में सदा डूबे रहने पर भी, सदा इन का भोग करते रहने पर भी, मैं ठीक वैसा का वैसा प्यासा बना रहूंगा जैसे कि जल में सतत् वर्तमान रहने पर भी मीन प्यासी की प्यासी ही बनी रहती है ।

अतः हे सुक्षत्र ! हे इन भोगों में क्षत-विक्षत होने से-भोगों में जीर्ण-शीर्ण होने से उत्तम विध बचाने वाले प्यारे प्रभुवर ! तू इन भोगों से बचा कर मुझे सुखी कर, शान्त कर और फिर विषयों से विमुख हो कर अन्तर्मुख होने पर मुझे और भी अधिक आनन्दित कर, मुझे और भी अधिक तृप्त कर । यही है प्रार्थना मेरे प्यारे प्रभुवर ! यही है विनय मेरे सब जग से न्यारे विभुवर ! स्वीकार कर मुझे सब प्रकार से सुखी कर, आनन्दित कर ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

विनय सं० ७

ओ३म् पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥
ऋ० १.३६.१५ ॥

अन्वयः—अग्ने ! रक्षसः नः पाहि, धूर्तेः अराव्णः पाहि । बृहद्भानो ! यविष्ठ्य ! रीषतः उत वा जिघांसतः पाहि ।

अन्वयार्थः—(अग्ने ! रक्षसः नः पाहि) हे अग्निस्वरूप परमेश्वर ! तू राक्षस से हमारी रक्षा कर (धूर्तेः अराव्णः पाहि) तू धूर्त-मायावी-छली-कपटी तथा अदानी-कृपरा-कंजूस से हमें बचा । (बृहद्भानो यविष्ठ्य !) हे महातेजस्वी एव अतिशय बलवाले प्रभो ! (रीषतः उत वा जिघांसतः पाहि) तू हिंसा करने वाले और हिंसा करने की इच्छा करने वाले अर्थात् मारने वाले और मारना चाहने वाले से हमारी रक्षा कर ।

हे अग्रणी परमात्मन्! जो [1]रक्षः है, राक्षस है, स्वार्थी है, केवल अपनी रक्षा-सुरक्षा मात्र ही अपना धर्म समझता है; जो अपनी रक्षा वा पालन-पोषण के लिए घृणित से घृणित-बुरे से बुरे कार्य को भी करने में हिचकता नहीं; जो अपने पालन-पोषण के लिये, अपने भोग विलासों के लिए एकान्त में धनी-मानी सज्जनों को लूटता है, उनकी वा उन के परिवारों की इज्जत पर आक्रमण करता है; जो रात को अन्धकार में

---

१. रक्षो रक्षितव्यमस्माद्, रहसि क्षरणोतीति वा, रात्रौ नक्षत इति वा ॥ निरुक्त ॥

किसी कारण विशेष से इधर-उधर आने-जाने वाले अकेले-दुकेले असहाय एवं असमर्थ जनों के धन-वैभव को लूटता-खसोटता है, और उससे फिर मौज मारता है, ऐसे राक्षस से ऐसे नीच पुरुष से प्रभुवर ! तू हमें बचा ।

हे तेजस्वी परमात्मन् ! जो धूर्त है, मायावी है, वंचक है, छल-कपट करने वाला है, धोखा-धड़ी करने वाला है, बाहर से हित का प्रदर्शन करते हुए भीतर से अहित करने वाला है, बाहर से मित्रता और भीतर से शत्रुता करने वाला है, बाहर से बड़ा मधुर और भीतर से बड़ा कड़वा है, अर्थात् जो संसार में प्रसिद्ध लोकोक्ति के अनुसार 'मुख में राम-राम बगल में छुरे के समान' है, जो संस्कृत की प्रसिद्ध उक्ति के अनुसार 'विषकुम्भं पयोमुखम्' बना हुआ है, ऐसे धूर्त से-ऐसे मायावी से-ऐसे कपटी से-ऐसे वंचक से-ऐसे धोखा देकर हानि पहुंचाने वाले नीच पुरुष से हमें सदा सुरक्षित रख, हमें सदा बचा ।

हे ज्ञान प्रकाश के स्रोत प्रभुवर ! तू हमें ऐसी बुद्धि दे, ऐसी सूझ दे, ऐसी शक्ति दे कि हम ऐसे राक्षस और धूर्त से अपने को सदा सुरक्षित रख सकें, अपने को सदा बचा सकें ।

हे ज्ञान प्रकाश के दाता अग्रणी परमात्मन् ! जो "अरावा' है, अराति है, अदानी है, कृपण है, कंजूस है, जो बहुजनहिताय वा सर्वजनहिताय किसी भी शुभ कार्य में वा दीन-दुःखियों, असहाय और अनाथों के लिए न कभी तन देता है, न कभी

---

१. राव्णः—"रा दाने" धातु से रावन शब्द बनता है, न रावा अरावा तस्मात् अराव्णः' । 'अरावा' का अर्थ है दान न देने वाला ।

मन देता है, न कभी धन देता है, और न ही कभी समय देता है, ऐसे सामूहिक अभ्युत्थान एवं दीन दुःखियों के प्रति उपेक्षा बर्तने वाले अरावा से, अदाता से, कृपण से, कंजूस से, और सर्वथा स्वार्थपरायण व्यक्ति से तू हमारी रक्षा कर, तू हमें बचा।

हे महान् तेजस्वी एवं अतिशय बलवाले भगवन्! जो अपने अधम स्वार्थों के लिए वा अपने निकृष्ट लोभ के लिए हमारी हिंसा करता है वा हिंसा करना चाहता है, जो हमें सताता है वा सताना चाहता है, जो हमें मारता है वा मारना चाहता है, ऐसे निर्दयी नीच पुरुष से भी तू हमें सब प्रकार से सुरक्षित रख, तू हमें सब प्रकार से बचा।

हे तेजोमय महान् परमेश्वर! तू हमें ऐसा दृढ़ शरीर प्रदान कर, ऐसा दृढ़ मनोबल प्रदान कर, ऐसा दिव्य आत्मबल प्रदान कर कि जिससे हम तेरे आदेश-उपदेश के अनुसार किये गये अपने पुरुषार्थ एवं तेरी अपार कृपा से इन नीच आततायी हत्यारे और हत्या की योजना बनाने वालों से अपने आप को सब प्रकार से सुरक्षित रख सकें। यही है प्रार्थना हमारी, यही है याचना हमारी, स्वीकार करो और हमें सब प्रकार से कृतार्थ करो।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥



विनय सं० ८

ओ३म् त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ ऋ० १-९१-५ ॥

अन्वयः—सोम ! त्वं सत्पतिः असि, त्वं राजा उत वृत्रहा । [असि] त्वं भद्रः असि, [त्वं] क्रतुः [असि] ।

अन्वयार्थः—(सोम ! त्वं सत्पतिः असि) हे सौम्यगुणों से सम्पन्न परमेश्वर ! तू सत्पुरुषों की रक्षा करने वाला है, (त्वं राजा उत वृत्रहा) तू राजा है, सब पर शासन करने वाला है, सबको अपने अनुशासन में रखने वाला है। तेरे उस शासन, अनुशासन में जो बाधक बनते हैं उन वृत्रों का हनन करने वाला भी तू ही है। (त्वं भद्रः असि) तू भद्र है, अर्थात् सब को लौकिक सुख-सौभाग्य से सम्पन्न करने वाला है और सब का आध्यात्मिक दृष्टि से भी कल्याण करने वाला है (क्रतुः) तू ही सब जगत् का 'क्रतुः' है, कर्त्ता है। अर्थात् सब जगत् का निर्माण कर तू[1] ही सब को अपने-अपने कर्मों के अनुसार जाति आयु और भोग प्रदान करने वाला है।

हे सोम ! हे सब संसार के पदार्थों को उत्पन्न करने वाले और सौम्य स्वभाव से सब को सब प्रकार के सुख-सौभाग्यों को प्रदान करने वाले प्यारे प्रभो ! तू 'सत्पति' है, सज्जनों

---

१. याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।
यजु. ४०-८ ।

२. सत्पतिः—सतां पतिः—सत्पतिः ।

का रक्षक है, सत्पुरुषों का भलीभान्ति पालन-पोषण करने वाला है, सत्पुरुषों को ही सब प्रकार से सुख-शान्ति और आनन्द देने वाला है।

हे सोम ! शक्तिसम्पन्न परमेश्वर ! तू राजा है, सब पर न्यायपूर्वक शासन करने वाला है, सबको अपने अनुशासन में रखने वाला है, तू सबके सुख-सौभाग्य और महा-सौभाग्य के लिए बड़े ज्ञान का प्रकाश करने वाला है, तू सब के लिए नानाविध उत्तम-उत्तम पदार्थों की व्यवस्था करने वाला है। अब ऐसे तुझ दिव्य उपकारी राजा के अनुशासन में जो बाधक बनते हैं, तेरी न्याय व्यवस्था में जो रुकावट बनकर खड़े हो जाते हैं, तेरे ज्ञान के प्रकाश में जो अवरोधक बन जाते हैं, तो तू 'वृत्रहा' ऐसे उन वृत्रों का हनन कर देता है, ऐसे उन नीच पुरुषों को तू समाप्त कर देता है।

हे सोम ! हे चन्द्रमा के समान शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू 'भद्रः' है, हम सब को सुख देता है, सांसारिक दृष्टि से ऐसे सब साधन प्रदान करता है जिन से हम सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें, शान्तिपूर्वक जीवन यापन कर सकें, यह बात पृथक् है कि हम उन सुख-सौभाग्यों के अपात्र बनकर उनको न प्राप्त कर सकें। इतना ही नहीं, तू आन्तरिक दृष्टि से भी हमारा सब प्रकार से कल्याण करता है और हमें सब प्रकार से आनन्दित करता है, तृप्त करता है, यदि सचमुच हम उसके अधिकारी होवें तो।

है सोम ! हे सर्वविध पदार्थों को उत्पन्न करने वाले परमपिता परमात्मन् ! तू क्रतुः' है, कर्मशील है, निरन्तर

कर्म करता रहता है, सतत् सब ससार को उत्पन्न करता रहता है, उसको धारण करता रहता है, उसकी व्यवस्था करता रहता हैं, इस जगत् में वर्तमान सब प्राणियों को अपने-अपने कर्मों के आधार पर फल प्रदान करता रहता है।

हे सौम्य प्रभुवर ! हमें ऐसी सद्बुद्धि दो कि जिससे हम सज्जन बनें, सत्पुरुष बनें, सच्चे मानव बनें और उस के परिणामस्वरूप हम सदा तेरी कृपा के पात्र बनें, तेरे प्यार और आशीर्वाद के पात्र बनें। इतना ही नहीं, हम तेरे इस विशाल ब्रह्माण्डरूप साम्राज्य में सदा तेरे अनुशासन में वर्तमान रहें, तेरे ज्ञान प्रकाश एवं शुभ कर्मों के प्रवाह में कभी भूलकर भी हम बाधक न बनें, सदा उसमें साधक ही बनें ताकि हम तेरे हनन से बच कर सदा तेरी कृपा के पात्र बन सकें।

हे संसार भर के कर्ता और धर्ता प्रभुदेव ! हम तेरे आदेश और उपदेश के अनुसार इस जगत् में ऐसा जीवन व्यतीत करें कि हमारा सब प्रकार से भद्र हो, हमारा सब प्रकार से भला हो, हम जिससे लोक में सब प्रकार से सुखी हों, सब प्रकार से शान्त हों और अन्त में सब प्रकार से आनन्दित भी हों। यही है विनय प्रभुवर ! यही है विनय विभुवर !

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

—:o:—

विनय सं ६

ओ३म् यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ।।
यजु० ३६. २२ ।।

अन्वयः—यतः यतः समीहसे ततः नः अभयं कुरु । नः प्रजाभ्यः शं कुरु, नः पशुभ्यः अभयं (कुरु) ।

अन्वयार्थः—हे ईश्वर ! (यतः यतः सम्-ईहसे) जहां-जहां से तू सम्यक् चेष्टा करता है (ततः नः अभयं कुरु) वहां-वहां से तू हमें भयरहित कर । (नः प्रजाभ्यः शं कुरु) तू हमारी प्रजाओं के लिए कल्याण कर और (नः पशुभ्यः अभयम्) हमारे पशुओं के लिये अभय कर ।

हे ईश्वर ! तू जहां-जहां से सम्यक् चेष्टा करता है वहाँ-वहाँ से तू हमें अभय कर । तू हमारी सन्तान को सुखी कर और हमारे पशुओं को निर्भय कर ।

हे ईश ! हे ईश्वर ! हे परमेश्वर ! तू जहाँ-जहाँ से जब-जब हमारे प्रति समीहन करता है, सम्यक् चेष्टा करता है, हमें अपने दैनिक जीवन में किसी आचार आहार और व्यवहार पर सम्यक् बोध देता है, वहाँ-वहाँ से तब-तब तू हमें सब प्रकार से अभय कर, निर्भय कर, भयरहित कर । प्रभुवर ! तू हमें ऐसी शक्ति दे कि हम तेरे सम्यक् बोध के आधार पर, तेरी सम्यक् प्रेरणा के आधार पर ऐसा आचरण करें, ऐसा व्यवहार करें कि जिस के करने पर हमें किञ्चित् मात्र भी

भय शंका और लज्जा न हो, वरन् सदा आनन्द, उत्साह और निर्भयता बढ़ती रहे।

हे भगवन्! तू कहां से हमारे प्रति समीहन-सञ्चेष्टा नहीं करता! अर्थात् सर्वव्यापक होने से सर्वदा सब कालों में, सर्वत्र सब स्थानों में, सर्वतः-सब ओर से, सर्वथा-सब प्रकार से तू हमारे प्रति समीहन करता रहता है, हमें सम्यक् बोध देता रहता है, इसलिए कि हम ऐसे कर्म करें, ऐसे कार्य करें कि जिस से फिर हमें किसी से किसी प्रकार का भी भय न रहे। प्रभुवर! तू अपने बोध के अनुसार आचरण करने वाले हम उपासकों को सर्वदा सर्वत्र सब ओर से, सब प्रकार से भय-रहित कर।

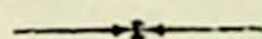
हे सुखों के अद्वितीय स्रोत सर्वेश्वर! तू हमारी प्रजाओं को सुखी कर। हे जगदीश्वर! तेरी अपार कृपा से, तेरे दिव्य समीहन से, तेरी दिव्य प्रेरणा से वा वेदोक्त सदुपदेश से हम अपनी सन्तानों को ऐसे प्रकृष्ट संस्कारों वाली बनायें, ऐसे उत्तम आचार-विचारों वाली बनायें कि उनका सारा जीवन सुख-सौभाग्य से, शान्ति और आनन्द में व्यतीत होवे।

हे सब जग के स्वामी परमेश्वर! तू हमारे पशुओं को निर्भय कर, सब प्रकार से सुखी कर। हे जगदाधार प्रभो! तेरी कृपा, तेरे आदेश और उपदेशों से हम अपने हाथी, घोड़े और गौ, बैल, भेड़, बकरी आदि पशुओं का ऐसे पालन-पोषण करें, ऐसे उनका रक्षण-संरक्षण करें कि उन को किसी भी प्रकार का घर-बाहर भय न हो।

हे ऐश्वर्यशाली प्रभुवर! ऐसी कृपा कर कि तेरी पावन सुखद छत्रछाया में हम अपने सभी पारिवारिक सदस्यों के साथ

सुख-सौभाग्य पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें । और यहां तक कि अपने गौ,अश्व आदि पशुओं को भी सब प्रकार से स्वस्थ, प्रसन्न और तृप्त रख सकें । यही है विनती हमारी, यही है विनय हमारी ! स्वीकार करो और हमें सब प्रकार से कृतार्थ करो ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥



विनय सं० १०

ओ३म् रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुच ँराजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥

यजु० १८.४८॥

अन्वयः—नः ब्राह्मणेषु रुचा रुचं धेहि, नः राजसु (रुचा) रुचं कृधि। विश्येषु शूद्रेषु (रुचा) रुचं (धेहि), मयि (रुचा) रुचं धेहि।

अन्वयार्थः--हे वेदज्ञान के अधिपति परमेश्वर! तू (नः ब्राह्मणेषु रुचा रुचं धेहि) हमारे ब्राह्मणों में तेज से तेज और प्रेम से प्रेम धर, (नः राजसु रुचं कृधि) हमारे क्षत्रियों में तेज से तेज और प्रेम से प्रेम भर, (विश्येषु शूद्रेषु रुचं) हमारे वैश्यों एवं शूद्रों में तेज से तेज और प्रेम से प्रेम भर और (मयि रुचं धेहि) मुझ में तेज से तेज और प्रेम से प्रेम भर।

हे वेदवाणी के अधिपति प्यारे परमेश्वर! तू हमारे इन ब्राह्मणों में-इन वेदवेत्ता-ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी विद्वानों में अपने अनुपम तेज से तेज भर, अपने अद्वितीय प्रेम से प्रेम भर। प्रभुवर! ये ज्ञानी विद्वान् वेद एवं तेरे सम्पर्क में आकर तेरी दिव्य दीप्ति से दीप्तिमान् बन जायें और तेरी प्रीतिसे प्रीतिमान् बन जायें। फिर तेरी दीप्ति से दीप्तिमान् और तेरी प्रीति से प्रीतिमान् हुए-हुए हम सब के प्रति तेजोमय-ओजोमय होकर प्रीतिपूर्वक व्यवहार करने वाले बनें और ज्ञान और ध्यान का उपदेश करने वाले बनें।

---

१ रुचः--दीप्तयः प्रीतयो वा। यजु० १८.४६॥
रुचः प्रीतयः। य० ८.४७ (दयानन्द)।

हे भगवन् ! हमारे क्षत्रियों, शूरवीरों में, देश के सच्चे रक्षकों में, प्रजा को क्षत-विक्षत होने से सदा बचाने वालों में अपनी दीप्ति से ऐसी दीप्ति भरो, अपनी प्रीति से ऐसी प्रीति भरो-ऐसा प्रेम भरो कि जिससे वे तेरी दीप्ति से दीप्तिमान् होकर–तेरे तेज से तेजस्वी होकर, तेरी प्रीति से प्रीतिमान् होकर– तेरे प्रेम से प्रेममय होकर सारे राष्ट्र की प्रीतिपूर्वक दृढ़ता और वीरता से रक्षा कर सकें, दुर्जनों से सज्जनों को क्षत-विक्षत होने से-पीड़ित होने से सदा बचा सकें।

हे ज्ञान के दिव्य स्रोत प्रभो ! तू हमारे वैश्यों में, कृषक और व्यापारियों में अपने तेज से ऐसा तेज भरना, अपने प्रेम से ऐसा प्रेम भरना कि वे तेजस्वी होकर-सशक्त होकर, परिश्रम से प्रेमपूर्वक कृषि आदि पुरुषार्थ का कार्य कर सकें और राष्ट्र को अधिक से अधिक एवं उपयोगी से उपयोगी उत्पादन दे सकें। व्यापारी भी वैसे ही सशक्त होकर–सबल होकर प्रेमपूर्वक राष्ट्रवासियों वा परराष्ट्रवासियों की आवश्यकताओं को हृदय से अनुभव करते हुए आटे में नमक के तुल्य उचित एवं मर्यादित लाभ पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर सभी प्रकार का उत्पादन पहुँचा सकें।

हे ईश्वर ! हमारे शूद्रों में, हमारे प्रिय सेवकों में, सेवा के माध्यम से त्रैवर्णिकों से–ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों से वा सभी राष्ट्रवासियों से अर्थ का उपार्जन करने वालों में भी अपने तेज से ऐसा तेज भर, अपने प्यार से ऐसा प्यार भर कि ये सब भी शरीर से सशक्त होकर– देह से सबल होकर प्यार में भर-भर कर राष्ट्रवासियों की सेवा-शुश्रूषा कर सकें।

हे दीप्ति और प्रीति के परम स्रोत ! हे तेज और प्रेम के

अद्वितीय उद्गम् ! हे प्यारे एवं सब जग से न्यारे परमात्मन् ! तू मुझ में भी अपना वह दिव्य तेज धर कर मुझे तेजस्वी बना, तू मुझ में अपनी दिव्य दीप्ति भर कर मुझे दीप्तिमान् बना। तू मुझ में भी अपनी अनुपम प्रीति भर कर मुझे प्रीतिमान् बना, मुझ में भी अपना पावन प्यार भर कर मुझे प्यार से भरपूर बना, ताकि मैं भी प्रेमपूर्वक यथाशक्ति कुछ सेवा कर सकूं।

हे तेजोमय स्नेहमय प्रभो ! तू मुझ में ही नहीं वरन् हम सब में ही ऐसा तेज और प्यार भर, ऐसी दीप्ति और ऐसी प्रीति भर कि जिस किसी भी वर्ण वा आश्रम में हम विद्यमान हों उसमें रहते हुए भी हम दूसरे वर्णाश्रम वालों को सोत्साह सोमंग, स्नेह, सहानुभूति और सहयोग दे सकें, उन का यथोचित आदर और मान कर सकें ताकि हम सब मनुष्य प्रेमपूर्वक रहते हुए अपना सामूहिक अभ्युत्थान करते हुए सुख-शान्ति और आनन्द को प्राप्त कर सकें।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

विनय सं० ११

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।। यजु० ३६.२४ ।।

अन्वयः–देवहित शुक्रं चक्षुः **पुरस्तात्** उत् चरत, तत् शतं शरदः पश्येम, शतं शरदः जीवेम, शतं शरदः शृणुयाम, शतं शरदः प्रब्रवाम, शतं शरदः अदीनाः स्याम, च शतात् शरदःभूयः

अन्वयार्थ-जो(देवहित[1] शुक्रं चक्षुः) देवों का हितकारी शुद्धस्वरूप, चक्षु के समान मार्गदर्शक परमेश्वर (पुरस्तात् उत् चरत्) हमारे सम्मुख उदय हुआ है–उपस्थित हुआ है (तत्) उस प्रियतम प्रभु को (शतं शरदः पश्येम) हम सौ वर्षों तक निरन्तर देखें, (शतं शरदः जीवेम) उसकी उपासना आदि के लिए हम सौ वर्ष तक प्राणों को धारण करें-जीवें, (शतं शरदः शृणुयाम) उसी देव के सम्बन्ध में सौ वर्षों तक सुनें, (शतं शरदः प्रब्रवाम) उसी प्रभु का सौ वर्षों तक गुणगान करें । इन सभी कार्यों को करते हुए हम (शतं शरदः अदीनाः स्याम) सौ वर्षों तक अदीन होकर रहें, (च शरदः, शतात् भूयः) और सौ वर्षों तक ही नहीं वरन् उस सौ से भी

———————

१. देवानां हितं यस्मात् तत् देवहितम् ।

अधिक वर्षों तक उसी परम दिव्य मार्गदर्शक देव को ही देखें, सुनें और गायें तथा अदीन बने रहें ।

हे देवों के हितैषी शुद्ध स्वरूप और चक्षु के समान मार्ग-दर्शक परम प्यारे परमेश्वर! उपासना कालमें समाधिस्थ अवस्था में उपासक जन-योगीजन जिस तेरे शुद्धतम तेजोमय स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं, जिस तेरे पावन दिव्य स्वरूप का अनुभव करते हैं, प्रभुवर ! वह तेरा दिव्य तेजोमय पावन स्वरूप उपासना से पृथक् व्युत्थान काल में भी हम से ओझल न हो । अर्थात् हम अपने सांसरिक दैनिक क्रिया-कलाप को करते हुए भी तेरे उस पावन अनुपम स्वरूप को सदा देखते रहें-सदा अनुभव करते रहें । योगदर्शन व्यास भाष्य के शब्दों में कहें तो 'शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन् वा'' सोते जागते या मार्ग पर चलते हुए सर्वत्र सदा हमें तेरा ध्यान बना रहे; तेरा भीतर से अनुभव होता रहे । हे मार्गदर्शक! हे पथ प्रदर्शक! हम अपना जीवन ऐसे व्यतीत करें, हम अपना खान-पान ऐसा बनाए रखें, हम अपना रहन-सहन ऐसा चलाए रखें कि न्यून से न्यून सौ शरद ऋतुओं तक-न्यून से न्यून सौ वर्षों तक भीतर बाहर सर्वत्र तेरा दर्शन करते रहें, भीतर-बाहर से तेरा अनुभव करते रहें, हम सौ वर्षों तक स्वस्थ होकर जीते रहें, हम सौ संवत्सरों तक समर्थ होकर सुनते रहें, हम सौ वर्षों तक वाणी से बोलते रहें, हम सौ वर्ष पर्यन्त अदीन-स्वाधीन बने रहें । इससे भी अधिक यदि जीयें तो हे प्रभुवर! वह भी ऐसे ही निरन्तर तेरा अनुभव करते हुए, सहज स्वभाव से देखते, सुनते, बोलते और अदीन ओकर स्व कार्यों को स्वयं करते हुए जीयें । यही प्रार्थना है प्रभो! स्वीकार करो और हमें कृतार्थ करो । ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

विनय सं० १२

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम ॥ यजु. ४०.१६ ॥

अन्वयः—अग्ने! अस्मान् राये सुपथा नय। देव! विश्वानि वयुनानि विद्वान् । अस्मत् जुहुराणम्-एनः युयोधि। ते भूयिष्ठां नमः उक्ति विधेम।

अन्वयार्थः—(अग्ने! अस्मान् राये सुपथा नय) हे प्रकाशस्वरूप करुणामय जगदीश्वर ! तू हम को ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए सुपथ से ले चल। (देव! विश्वानि वयुनानि विद्वान्) हे दिव्य अन्तर्यामी परमेश्वर ! तू हमारे सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञानों को, सब प्रकार की वृत्ति-प्रवृत्तियों को भली-भांति जानता है। अतः (अस्मत् जुहराणम्-एनः युयोधि) तू हम से कुटिलतायुक्त किये जाने वाले पापरूप कर्म को दूर कर ! तेरे उत्तम नेतृत्व और करुणामय दिव्य संरक्षण में तेरे प्रति हृदय से कृतज्ञता का अनुभव करते हुए हम (ते भूयिष्ठां नमः उक्ति विधेम) तेरे लिए बहुविध नमनपूर्वक स्तुति करें, हम तेरा जी भर-भर कर गुणगान करें।

हे सबका सफल नेतृत्व करने वाले ज्ञानस्वरूप अग्रणी परमेश्वर ! तू हमें आन्तरिक और बाह्य सर्वविध ऐश्वर्यों की उपलब्धि के लिए धर्मानुकूल-वेदानुकूल सत्य मार्ग से चला।

हे अन्तर्यामी सर्वसुख दाता दिव्य देव! तू अन्तर्यामी हमारे सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञानों को, सब वृत्ति-प्रवृत्तियों को, सब विचार

और व्यवहारों को अच्छी प्रकार से जानता है। कोई ऐसी वृत्ति-प्रवृत्ति नहीं, कोई ऐसा विचार और व्यवहार नहीं जो कि हम तुझ से छिपा सकें। अतः कृपा करके तू हम से कुटिलता पूर्वक किये जाने वाले, खोटी नीयत से किये जाने वाले पापरूप कर्म को दूर कर, ताकि सब प्रकार से शुद्ध-पवित्र हो कर कृतज्ञता में भर-भर कर तेरी नम्रतापूर्वक प्रशंसा वा विनम्रभाव से परिपूर्ण होकर स्तुति हम कर सकें।

हे अग्निसम सब में विद्यमान् परमात्मन्! हे सब के अन्तरात्मन्! हमारा क्या ध्येय है, हमारा क्या उद्देश्य है, हमारा क्या लक्ष्य है, हमें कहाँ जाना है, हमें कहां पहुंचना है, इस का हमें भली-भांति ज्ञान नहीं, इसका हमें भली-भाति भान नहीं। प्रभुवर! तू ही भली-भांति यह जानता और पहचानता है, कि हमें कहां जाना है हमें कहाँ पहुंचना है, हमारा क्या ध्येय है; हमारा क्या उद्देश्य है, हमारा क्या लक्ष्य है...।

हे सर्वनायक अग्रणी देव! फिर उस ध्येय को, उस उद्देश्य को, उस लक्ष्य को पाने का, उस तक पहुंचने का कौन सा पथ है, कौन सा मार्ग है. यह भी मैं नहीं जानता। मैं तो सर्वथा अज्ञ हूं, अनजान हूं। अतः चलने से मैं डरता हूं-भयभीत होता हूं--घबराता हूं, यह सोच कर कि कहीं राह से भटक न जाऊं, कहीं पथ से विचलित न हो जाऊँ, कहीं मार्ग ही भूल न जाऊं। प्रभुवर! तू तो अग्रणी है, नेता है, मार्गदर्शक है, पथ-प्रदर्शक है, फिर तू पथिकृत्' भी है, मार्ग बनाने वाला भी है। अतः हे ज्ञानप्रकाश के परम स्रोत परमेश्वर! तू हमें भी अपना ध्येय बता, हमें भी अपना लक्ष्य सुझा।

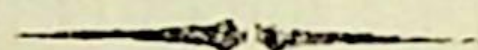
फिर तू स्वयं ही हमारा पथ-प्रदर्शक बन कर हमें उस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए राह बता, सुमार्ग सुझा, बड़े प्यार से हमें फिर राह-रास्ते पर ऐसे लगा जिससे कि हम कहीं अटकें नहीं, कहीं भटके नहीं, कहीं लटकें नहीं और सीधा ध्येय तक पहुंच जावें ।

हे अन्तर्यामी दिव्यदेव! हमें ज्ञान नहीं, हमें भान नहीं कि हम में क्या-क्या न्यूनतायें हैं—हम में क्या-क्या त्रुटियाँ हैं, हममें क्या-क्या कमियाँ हैं, पर तू तो कण-कण में, क्षण-क्षण में वास करने वाला ऐसा दिव्य ज्ञानी है कि तू हमारे भीतर-बाहर को जानता है, हमारे सर्वविध विचार और व्यवहारों को जानता है, हमारी सब वृत्ति-प्रवृत्तियों को जानता है, यहां तक कि तू हमारे हृद्गुहा में छिपे हुये सूक्ष्म से सूक्ष्म संस्कारों को जानता है । हे हमारे आत्मा के भी आत्मन् ! परम पिता परमात्मन् ! तुझ से हमारा कुछ भी तो छिपा हुआ नहीं है । अतः तू ही हमारी सब न्यूनताओं को—त्रुटियों को—कमियों को कुटिलताओं को, पापों को सब प्रकार से दूरकर, हम से पृथक् कर ।

हे सर्वरक्षक ! हे सब के पथ-प्रदर्शक! हे अशरण शरण ! हम तो तेरी शरण में आन पड़े हैं । हे सर्वज्ञ ! हे सर्ववित् ! हे दुर्गुणनाशक ! हे सर्व सद्गुणप्रापक ! हे शुद्धबुद्ध-मुक्त स्वभाव कल्याणनिधे ! हे शरण्य ! हे वरेण्य प्रभो ! तेरे इन दिव्य उपकारों के लिए हम तेरी क्या भेंट धर सकते हैं, तेरे चरणों में क्या अर्पण कर सकते हैं, अतिरिक्त इस के कि कृतज्ञतापूर्वक तेरा धन्यवाद कर सकें, कृतज्ञतापूर्वक विनम्रभाव से तेरा गुणगान कर सकें । इसलिये हम तेरे उपकारों से

अत्यन्त उपकृत हुए-हुए झूम-झूम कर तेरा विनम्र भाव से गुणगान करते हैं। हमें अनुभव होता है कि इस कृतज्ञभाव से तेरा बहुविध गुण-गान करते रहने से भी हमारा ही और अधिक सुख बढ़ता है, शान्ति बढ़ती है और आनन्द बढ़ता है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥



विनय सं० १३

ओ३म् भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तदाभर ॥ साम १३४ ॥

अन्वयः—[हे [1]इन्द्र !] विश्वाः [2]द्विषः अपभिन्धि, बाधः [3]मृधः परिजहि । [यत्] स्पार्हं वसु तत् आभर ।

अन्वयार्थः—हे इन्द्र ! हे परमेश्वर ! (विश्वाः द्विषः अपभिन्धि) तू हमारी समस्त काम-क्रोध आदि वृत्तियों को वा समस्त द्वेष भावनाओं को विदीर्ण कर दे - छिन्न-भिन्न कर दे,(बाधः मृधः परिजहि)जीवनोत्थयान में बाधक-विघ्नोत्पादक हिंसक पाप वृत्तियों को भी सब प्रकार से नष्ट कर दे । तथा जो (स्पार्हं वसु) सब उपासकों का स्पृहणीय, चाहने योग्य अभिलाषित धन है (तत् आभर) वह हमें सब ओर से प्राप्त करा ।

हे इन्द्र ! हे हमारे सब प्रकार के भीतर-वाहर के शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले और सर्वविध ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाले प्यारे प्रभो ! तू हमारे समस्त उन काम-क्रोध आदि शत्रुओं को वा सब द्वेषभावों को बिदीर्ण कर, छिन-भिन्न कर । इसी प्रकार हमारे जीवनोत्थान में अनेक अन्य भी जो

---

१. इन्द्र—इन्द्रञ्छत्रूणां दारयिता वा इन्दतेर्वैश्वर्यकर्मणः । निरु० १०-१ ।

२. द्विषः—काम-कोधादिवृत्तीः । (सायण)

३. 'पाप्मा वै मृधः' (श० ६-३-३-६)

बाधा उत्पन्न करने वाले हिंसक विचार हैं वा पाप भाव हैं, उन सबको भी तू भली-भांति नष्ट कर दे। और फिर तेरा चाहने योग्य, अपने भीतर बसाने योग्य जो दिव्य वसु है-जो दिव्य धन है, वह हमें सब प्रकार से, सब ओर से प्रदान कर। हे सबसे प्यारे और सबसे न्यारे दिव्य प्रभो ! तपस्वियोंसे, भक्तों से, उपासकों से, साधकों से, ध्यानियों से, योगियों से स्पृहणीय जो वसु है, चाहने योग्य जो धन है, कामना करने योग्य जो वित्त है, अपनाने योग्य और हृदय में सब प्रकार से बसाने योग्य जो दिव्य वैभव है, हम उन तपस्वियों, स्तोताओं, भक्तों, उपासकों,साधकों,ध्यानियों और योगियों से अभिलषित चाहने योग्य और सब प्रकार से अपना कर अपने में बसाने योग्य उस वसु को चाहते हैं, उस परमधन को चाहते हैं, उस परमानन्दरूप परमैश्वर्य को चाहते है।

हे अवर ऐश्वर्य ही के नहीं वरन् परमैश्वर्य के भी स्वामी परमेश्वर ! हमने तेरा यह अवर ऐश्वर्य बहुत देख लिया, यह सांसारिक धन-वैभव बहुत देख लिया, यह जमीन-जायदाद बहुत देख ली, ये भूमि-भवन भी पर्याप्त देख लिये, ये सुन्दर से सुन्दर, आकर्षक से आकर्षक शरीररूपी घर अनेकों योनियों में बहुत देख लिये, नाना योनियों में विषय वासनाओं का स्वाद भी बहुत पा लिया और उस के माध्यम से सुन्दर से सुन्दर, प्यारे से प्यारे ये पुत्र-पौत्र, दुहितृ-दौहित्र भी पर्याप्त पा लिए ! इन बन्धु बांधवों के स्नेह सहयोग और सुख भी बहुत देख लिये, ये कार कोठियाँ, ये महल-मणियाँ भी पर्याप्त देख लीं, ये हाथी-घोड़े, ये गाय-बैल, ये भेड़ बकरियाँ, ये तोते-मैना आदि भी खूब देख लिये, ये पद-प्रतिष्ठायें भी बहुत देख लीं,

ये मान-सम्मान, ये स्वागत-सत्कार भी यथेष्ट देख लिए; ये सेवा-शुश्रूषा भी यथेष्ट देख ली, ये सुख-सौभाग्य भी प्रचुर पा लिये, इस संसार के बड़े से बड़े प्रसिद्ध से प्रसिद्ध विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों में जा-जाकर बहुत कुछ पढ़ सुन लिया, बहुत कुछ उपाधियां प्राप्त कर लीं, इन से निकल कर भी बड़ी-बड़ी दौड़ धूप करके भी देख लिया, बड़े बड़े नेता-विद्वानों के चरणों में भो सिर धर-धर कर देख लिया, सिर बहुत पटक-पटक कर देख लिया। ठीक है कुछ महान्पुरुषों से कुछ उजली-धुधंली राह तो मिली, पर यह सब कुछ करके भी-यह सब कुछ पाकर भी हमें ऐसा लगता है कि हमने मानो कुछ पाया ही नहीं, ये सब कुछ जान कर भी मानों हमने कुछ जाना ही नहीं, इस सबसे ज्ञानवान्-बुद्धिमान् बलवान् और धनवान् बन कर और कहला कर भी हमें ऐसा भासता है कि जैसे हम अब भी अज्ञानी के अज्ञानी ही हैं निर्बुद्धि के निर्बुद्धि ही हैं, अज्ञ के अज्ञ ही हैं, निर्बल के निर्बल ही हैं, निर्धन के निर्धन अर्थात् कङ्गाल के कङ्गाल ही हैं।

हे इन्द्र ! हे पर-अवर ऐश्वर्यों के एकमात्र दिव्य स्रोत प्रभुवर ! हम अब इस तेरे अवर ऐश्वर्य से-इस सांसारिक धन-वैभव से-इस लौकिक सुख-सौभाग्यों से परे हट कर आप का स्पृहणीय वसु चाहते हैं, वह कमनीय वित्त चाहते हैं; वह चाहने योग्य दिव्य धन चाहते हैं, वह अपनाने योग्य अद्वितीय ज्ञान धन चाहते हैं, वह अपने भीतर बसाने योग्य दिव्य वसु-परमानन्द चाहते हैं. जिसको जानकर मनुष्य सच्चा ज्ञानी बन जाता है, वास्तव में बुद्धिमान् बन जाता है, जिस को पाकर मनुष्य वास्तव में बलवान् बन जाता है, जिस को

पाकर मनुष्य वास्तव में वसुमान् बन जाता है, धनवान् बन जाता है, गुणवान् बन जाता है, प्रसादगुण सम्पन्न बन जाता है। वह ऐसा वसु है ऐसा धन है, ऐसा दिव्य वैभव है कि जिसके प्राप्त करने पर मनुष्य जीवन के अन्तिम दिनों में अपने को कङ्गाल नहीं समझता है वरन् अपने को बहुत बड़ा धनवान् अनुभव करता है, क्योंकि वह दिव्य धन इस के साथ जाता है। जब कि यह अवर धन-वैभव सुख-सौभाग्य सब यहां का यहां ही धरा रह जाता है।

हे प्रभुवर ! तू ऐसा दिव्य वसु-ऐसा वास्तव में तृप्त करने वाला परमधन देना चाहता है और हम उसे पाना चाहते हैं, परन्तु उस स्पृहणीय वसु-चाहने योग्य धन-पाने योग्य परम धन-परमानन्द की प्राप्ति की राह में जो विघ्न हैं, जो बाधक हैं, जो अवरोधक हैं, वे हमारे ही भीतर के काम क्रोध-लोभ मोह-अंहकार-ईर्ष्या-द्वेष आदि शत्रु हैं। वे ही हमें उस स्पृहणीय वसु को पाने के लिये आगे नहीं बढ़ने देते। हमने इन अपने मनोगत शत्रुओं से पर्याप्त संघर्ष किया और अब भी कर रहे हैं। परन्तु फिर भी ये हमारे बसके नहीं, अतः हम इन से पार नहीं पा रहे हैं, इनको जीत नही पा रहे हैं, ऐसे जैसे कि बाली सुग्रीव के बस का नहीं था इस लिए वह उसका पार नहीं पा रहा था, उसे जीत नहीं पा रहा था। तब उस सुग्रीव ने दशरथनन्दन राम का आश्रय लिया और उस से प्रार्थना की। राम ने उसकी अभ्यर्थना सुन ली। फिर जब सुग्रीव का मनोबल बढ़ गया तो उसने हिम्मत से बाली का आह्वान किया और भिड गया बाली से। बस फिर क्या था सुग्रीव का पुरुषार्थ और दाशरथि राम का अनुग्रह था, अत.

जरा सी सीध पड़ते ही राम ने सुग्रीव को सहायता की और सुग्रीव का बेड़ा पार हो गया। फिर जो सुग्रीव ने अपना अभिलषित धन-वैभव पाना था वह पा लिया। हे प्यारे और उस दशरथ-नन्दन राम से भी न्यारे परमेश्वर! हम भी सुग्रीव सम दुरवस्था में पड़े हुए तेरे-भक्त तेरे साधक आज इन शत्रुओं को जीतने के लिए, इन से निपटने के लिए, इन पर विजय पाने के लिए तुझे हृदय की टौस के साथ पुकार रहे हैं, तुझसे प्रार्थना कर रहे है कि आप हम अशक्तों की सहायता करो…। प्रार्थना करके भी हम सुग्रीव सम अपना पुरुषार्थ करते हैं, इस आशा और विश्वास से कि राम सम तू भी हमारी सहायता करेगा और हमारे लक्ष्य-स्पृहणीय वसु-चाहने योग्य परम धन-आनन्द के पाने में बाधक बाली सम इन काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहङ्कार ईर्ष्या-द्वेष आदि को समाप्त करेगा।

हे प्रभुवर! इतना ही नहीं, हमारी राह में ये अन्य भी अनेको बाधक, विघ्नत्पादक वृत्तियाँ हैं जो अपने साथ-साथ दूसरों की भी हिंसा करती रहती हैं, आपकी कृपा रही तो वे भी शीघ्र समाप्त हो जायेंगी। क्योंकि प्रभुवर! जब तेरी कृपा से हमारे भीतर के काम क्रोध आदि भाव समाप्त हो जायेंगे तो फिर हमारे पुरुषार्थ से और तेरी गुप्त सहायता से हमें चाहने योग्य तेरे दिव्य अध्यात्म वसु में बाधा उत्पन्न करने वाले ये हिंसक भाव, ये पाप भाव भी समाप्त हो जायेंगे। क्योंकि जब हम में काम रहता है, तो हमारे द्वारा अपने साथ साथ दूसरों की भी हिंसा होती है दूसरों के चरित्र की भी हानि होती है। इस प्रकार दूसरों को हानि पहुँचाना ही पाप है, जो हमें तेरे अनुपम प्यार-आनन्द रूप दिव्य धन से वंचित रखता

है । ऐसे ही हमारे क्रोध से जहां हमारा खून जलता है वहाँ अन्य की भी हानि सम्भव होती है, और यही पाप है जिससे कि हम बचना चाहते हैं । ऐसे ही हमारे अन्य लोभ-मोह-अहङ्कार-ईर्ष्या-द्वेष आदि से जहाँ अपनी हिंसा होती है, जहाँ हानि होती है वहाँ अन्यों की भी बड़ी भारी हिंसा होती है, बड़ी भारी हानिहोती है जो बड़ा भारी पाप है । इन्ही हिंसक, हानि कारक पापवृत्तियों- प्रवृत्तियों के कारण से ही हम तेरे अनुपम सराहनीय दिव्य वसु से तेरे चाहने योग्य अद्वितीय परम आनन्दरूप धन से वंचित रह जाते हैं । यही कारण हैं प्रभु-वर ! कि हम सुग्रीव सम असमर्थ साधक हारकर राम सम तुझ परम समर्थ इन्द्र के द्वार पर सहायता के लिए अलख जगाते हैं, तुझसे प्रार्थना करते हैं । प्रभुवर ! जैसे उस सुग्रीव की पुकार राम ने सुन ली वैसे ही आज तू भी हमारी पुकार सुन ले । हमें विश्वास है कि जिस दिन भी आप हमारी पुकार सुन लोगे और हम असमर्थों की सहायता के लिए सब प्रकार से सन्नद्ध हो जाओगे तो उस दिन इस सांसारिक राजा राम से भी अधिक समर्थ ससार भर के परम सम्राट प्रभुदेव ! हम इन अपने काम-क्रोध आदि शत्रुओं पर और इन अन्य अपने जीवनोत्थान में बाधक-विघ्नोत्पादक सब हिंसक पाप भावों पर भी विजय पा जायेंगे और तब तेरा स्पृहणीय-चाहने योग्य दिव्य तृप्तिकर आनन्दमय दिव्य धन भी पा जायेंगे । अतः प्यारे परमेश्वर ! हमारी प्रतिपल सहायता करो यही प्रार्थना है हमारी, यही विनति है हमारी । स्वीकार कर हमें सब प्रकार से कृतार्थ करो ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" द्वारा श्रद्धापूर्वक दान
वाले महानुभावों के सहयोग से लेखक की प्रकाशित पुस

	प्र०सं०	द्वि०सं०	तृ०स
१. प्रार्थना सुमन, भाग-१	२०००	४०००	
२. कौन चैन की नींद नहीं सो सकते और उसके उपाय	२०००	२०००	४०००
३. वेद सुधा, भाग-१	२०००	४०००	
४. विदुर की दृष्टि में बुद्धिमान कौन, भाग-१	२०००	४०००	
५. महान् विदुर के महान् उपदेश	२०००		
६. विनय सुमन, भाग-१	२०००	४०००	
७. प्रार्थना प्रदीप, भाग-१	२०००	४०००	
८. प्रार्थना प्रसून, भाग-१	२०००	४०००	
९. प्रार्थना सुमन, भाग-२	२०००		
१०. वेद-सुधा, भाग-२	२०००	४०००	
११. विनय सुमन, भाग-२	२०००	४०००	
१२. अनन्त की ओर	२०००	४०००	
१३. वैदिक पुष्पाञ्जलि, भाग-१	२०००		
१४. वैदिक गृहस्थाश्रम (सुखी गृहस्थ)	३०००	४०००	
१५. प्रभात वन्दन	३०००		
१६. वेदोपदेश वैदिक पुष्पाञ्जलि भाग-२	२०००		
१७. वेदोपदेश; भाग-१	४०००		
१८. वैदिक रश्मियां, भाग-१.	४०००		
१९. विनय सुमन, भाग-३	३०००		
२०. शयन विनय	४०००		

मुद्रित: गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी-मुद्रणालय, हरिद्वार